पी० एस० आर० सदानन्थम

बनाम

अरुणाचलम और एक अन्य

(P. S. R. Sadhanantham

v.

Arunachalam and Another)

[1 फरवरी, 1980]

[न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर, एस० मुर्तजा फजल अली, डी० ए० देसाई, आर०, एस० पाठक और ए० डी० कौशल]

संविधान, 1950—अनुच्छेद 136 सपठित अनुच्छेद 21—अनुच्छेद 21 के संबंध में अनुच्छेद 136 की अन्तर्वस्तु और स्वरूप—हत्या के मामले में उच्च न्यायालय द्वारा, अपील में, वर्तमान पिटीशनर की दोषमुक्ति—मृतक के भाई द्वारा संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत लेकर अपील—अपील में उच्चतम न्यायालय द्वारा पिटीशनर को भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन सिद्धदोष ठहराना—अपील की विशेष इजाजत को पिटीशनर द्वारा चुनौती—अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय में निहित न्याय करने और अन्याय का निवारण करने की अद्वितीय अधिकारिता में ही उसके प्रयोग की पद्धति, आवश्यक रूप से, विवक्षित है और इससे अनुच्छेद 21 की मांग पूरी हो जाती है—उच्चतम न्यायालय लोकहित को ध्यान में रखते हुए अपील की विशेष इजाजत दे सकता है।

मद्रास उच्च न्यायालय ने अपनी अपीली अधिकारिता में पिटीशनर सादानन्तम को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 और धारा 148 के आरोपों से दोषमुक्त कर दिया। मृतक के एक भाई अरुणाचलम ने दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील करने की विशेष इजाजत के लिए संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन इस न्यायालय में आवेदन किया न्यायालय ने विशेष इजाजत दे दी और अन्ततोगत्वा

अपील मंजूर कर ली गई तथा उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हुए भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित दोषसिद्धि और दण्डादेश को बहाल कर दिया गया था। पिटीशनर ने यह रिट पिटीशन फाइल किया है और दलील दी है कि इस न्यायालय का निर्णय और आदेश अकृतता है और इसे अपास्त किया जाना चाहिए। प्रमुख दलील यह है कि अनुच्छेद 136 अरुणाचलम (तृतीय प्रत्यर्थी) को विशेष इजाजत देने के लिए इस न्यायालय को सशक्त नहीं करता और न्यायालय द्वारा विशेष इजाजत देना तथा अपील ग्रहण करना संविधान के अनुच्छेद 21 के उल्लंघन में है। रिट पिटीशन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन यह आज्ञापक है कि किसी मनुष्य को दोषी ठहराने के लिए और उसकी स्वाधीनता से वंचित करने के लिए एक सभ्य प्रक्रिया हो। निस्संदेह, यदि उच्चतम न्यायालय अनुच्छेद 136 के अधीन इजाजत देता है और परिणामस्वरूप, उसे दोषी पाता है तो वह उसे उसकी स्वाधीनता से वंचित कर देता है और, इसीलिए, महत्वपूर्ण विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या अनुच्छेद 21 द्वारा प्रकल्पित कोई ऐसी प्रक्रिया है जो अनुच्छेद 136 से स्वतन्त्रता या उसमें विवक्षित है। यह प्रकट है कि ऐसा कोई कानूनी उपबन्ध नहीं है जो किसी पर व्यक्ति के पक्ष में अपील का ऐसा अधिकार सृष्ट करता है, जो उसे उच्च न्यायालय द्वारा दी गई दोषमुक्ति को चुनौती देने में समर्थ बनाए। दण्ड प्रक्रिया संहिता अपील का ऐसा अधिकार सृष्ट नहीं करती और साधारण तौर पर यह कहा जा सकता है कि अपील का अधिकार कानून की सृष्टि है। (पैरा 4)

अनुच्छेद 136 का विस्तार, परिधि और स्वरूप को बारीकी से समझने पर अपील के पूर्व विद्यमान अधिकार और पश्चात्वर्ती इजाजत देने के बीच विद्यमान विभाजन रेखा सुगमता से विलुप्त हो जाएगी जो पिटीशनर की दलील का प्रमुख आधार है। (पैरा 5)

किसी भी समाज में अन्याय को दूर करने के लिए न्याय-शास्त्र सम्बन्धी पहुंच और विस्तृत न्यायिक प्रक्रिया सामाजिक न्याय करने की प्रणाली के रूप में क्रियाशील विधि के बहुमुखी वैशिष्ट्य का निश्चित सूचक है। इस मापदण्ड के अनुसार, सांविधानिक व्यवस्था सर्वोच्च न्यायालय में न्याय करने की अधिकारिता निहित करती है जो सर्वव्यापी और सर्वशक्ति सम्पन्न है किन्तु जो न्यायिक विवेकाधिकार नामक बहुत ही परिष्कृत है और नम्य

सैंसर से नियंत्रित और मार्गदर्शित है। शक्ति और प्रक्रिया का यह उत्पत्ति स्रोत अनुच्छेद 136 है जो सम्पूर्ण गणराज्य में विधि के अनुसार न्याय के विस्तृत पालन को प्रमुखता प्रदान करता है। (पैरा 6)

अभिव्यक्त रूप से, अनुच्छेद 136 किसी ऐसे पक्षकार को इस रूप में अपील का अधिकार प्रदान नहीं करता, अपितु उपयुक्त मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए उच्चतम न्यायालय को व्यापक वैवेविक शक्ति प्रदान करता है। वैवेकिक आयाम तो बहुत विस्तृत हैं किन्तु वे न्यायालय की शक्ति के बारे में हैं। प्रश्न यह है कि क्या विवक्षा द्वारा यह एक निष्पक्ष प्रक्रिया की कल्पना करता है जैसा कि अनुच्छेद 21 में अनुध्यात है। ऐसा है। अनुच्छेद 136एक विशेष अधिकारिता है। यह अवशिष्ट शक्ति है, इसका विस्तार क्षेत्र असाधारण है और अन्याय का निवारण करने के लिए इसकी सीमा असीम हो सकती है। यह न्यायालय अन्याय का निवारण करके इसकी पूर्ति करता है और व्यापक रूप से यह शक्ति सामान्य मामलों में अनुच्छेद 136 से ली जाती है। क्या न्यायालय में निहित यह शक्ति ऐसी है जिसका प्रयोग उसकी इच्छानुसार किसी भी ढंग से किया जा सकता है? क्या इसके प्रयोग की रीति और प्रयोग के अवसर में कोई प्रक्रियात्मक प्रतिबन्ध नहीं है? क्या उस समय निष्पक्ष होकर कार्यवाही करना उसका कर्त्तव्य नहीं है जबकि या तो इजाजत देने के मामले में या ऐसी मंजूरी के बाद अपील के अन्तिम निपटारे में अनुच्छेद 136 के अधीन मामले की सुनवाई की जा रही हो? इसमें कोई संदेह नहीं है कि सर्वोच्च न्यायालय में निहित शक्ति में एक प्रक्रिया आवश्यक रूप से विवक्षित है। (पैरा 7)

अनुच्छेद 136 की संरचना एक मिश्रित संरचना है, इसमें शक्ति एवं प्रक्रिया निहित है—शक्ति इसलिए कि यह उच्चतम न्यायालय में अधिकारिता निहित करता है और प्रक्रिया इसलिए कि इसमें सुनवाई का ढंग दिया गया है। न्यायिक विवेकाधिकार के प्रयोग और सुनवाई का ढंग अधिबद्ध है जो कि न्यायालय की प्रक्रिया की एक विशेषता है। संक्षेप में, अनुच्छेद 136 के शब्दों में शक्ति और प्रक्रिया विहित है जिससे अनुच्छेद 21 की मांग की पूर्ति हो जाती है। (पैरा 8)

यदि अनुच्छेद 21 को अनुच्छेद 136 में पढ़ा जाए तो निष्कर्ष यह निकलेगा कि विशेष इजाजत के सम्बन्ध में एक निष्पक्ष प्रक्रिया विहित है जिसे न्यायालय दे सकता है या देने से इंकार कर सकता है। जब दोषमुक्ति के विरुद्ध

1980(2) eILR(PAT) SC 84

अपील करने की इजाजत के लिए आवेदन किया जाता है तो यह न्यायालय उस कार्यवाही में अन्तर्वलित दैहिक स्वाधीनता के खतरे कीगम्भीरता का मूल्यां कन करता है। यह मानना उचित है कि अनुच्छेद 136 के अधीन पिटीशन पर विचार करते समय न्यायालय स्वाधीनता, उस व्यक्ति, जो न्यायालय से ऐसी इजाजत चाहता है, उसके हेतु और उसके सुनने के अधिकार के प्रश्न पर तथा उन महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान देगा जिनके आधार पर न्यायालय इजाजत देने के लिए प्रेरित होता है। जब अनुच्छेद 136 के अधीन प्रक्रियात्मक परिस्थितियों और कसौटी न्यायालय की अधिकारिता को प्रभावित करती है तो यह निष्कर्ष निकालना युक्तियुक्त है कि अनुच्छेद 21 में विवक्षित निष्पक्ष प्रक्रिया की मांग का पर्याप्त उत्तर मिल गया है। (पैरा 9)

इस प्रकार अनुच्छेद 136 शक्ति एवं प्रक्रिया का एक समाकलित उपबंध है, जो अनुच्छेद 21 की मांग की पूर्ति करता है जिससे प्राण और स्वाधीनता से वंचित करना न्यायोचित ठहरता है। (पैरा 10)

वैवेकिक शक्ति जितनी व्यापक है इसका प्रयोग उतना ही कम किया जाता है। इस न्यायालय ने अनेकों बार इस बात पर जोर दिया है कि यद्यपि पक्षकार अन्धाधुन्ध इस अधिकारिता का सहारा लेते हैं, फिर भी न्यायालय इस शक्ति का कंजूसी से यदा-कदा प्रयोग करता है। इसके अतिरिक्त, कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़कर, न्यायालय उसे इजाजत नहीं दे सकता जो अभिलेख पर पक्षकार का नामनिर्देशिती नहीं है। इस प्रकार प्रक्रियात्मक सीमाएं विद्यमान हैं और सुनिश्चित निदेशक-सिद्धांतों द्वारा शासित है। (पैरा 11)

अनुच्छेद 136 के अधीन अधिकारिता का सहारा लेने के लिए ऐसे प्राइवेट पक्षकार को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता जो निजी प्रतिशोध या वैयक्तिक बदले की भावना से न्यायिक प्रक्रिया का प्रयोग करना चाहता है। जहां सिविल कार्यवाही हो सकती है, वहां भी इसे प्रपीड़न के उपकरण के रूप में अनुज्ञात नहीं किया जा सकता। प्रत्येक मामले में न्यायालय को इस बात पर अवश्य विचार करना चाहिए कि किस हित से प्रेरित होकर पिटीशनर न्यायालय में आया है और क्या विशेष इजाजत देने से समाज का हित-साधन होगा। ऐसे विधि-शास्त्र में जो प्राण और स्वाधीनता के अधिकार को मूलभूत प्राथमिकता देता है, न्यायालय का यह कर्त्तव्य है कि वह उन लोगों के हेतु और आकांक्षाओं का सूक्ष्म विश्लेषण करे जो किसी दूसरे के प्राण या स्वाधीनता

1980(2) eILR(PAT) SC 84

के विरुद्ध उसकी प्रक्रिया का इस्तेमाल करना चाहता है। इस जांच में संभवतः न्यायालय यह समाधान करना चाहेगा कि क्या राज्य के पास विशेष इजाजत के लिए पिटीशन फाइल न करने के लिए उपयुक्त कारण हैं या नहीं? न्यायालय को परिवादी से भिन्न किसी प्राइवेट पक्षकार द्वारा फाइल किया गया विशेष इजाजत पिटीशन उन्हीं मामलों में ग्रहण करना चाहिए जिनमें वह आश्वस्त हो जाए कि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील से लोकहित-साधन होगा और यह कि राज्य ऐसे कारणों से विशेष इजाजत के लिए पिटीशन फाइल करने से विरत रहा है जिनका लोकहित से कोई सम्बन्ध नहीं है बल्कि प्राइवेट प्रभाव, सद्भाव की कमी और अन्य अतिरिक्त बातों से प्रेरित रहा है। तदनुसार, दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत के लिए पिटीशन फाइल करने के लिए परिवादी से भिन्न किसी प्राइवेट पक्षकार के अधिकार को निर्बन्धित है। संभवतः यह ध्यान रखना वांछनीय है कि विशेष इजाजत देने के बाद अपील की जाएगी और इसीलिए अधिकारिता का सहारा ऐसे पिटीशनर द्वारा लिया जाए जिसे विधि द्वारा मान्य सुने जाने का अधिकार प्राप्त है। (पैरा 27)

अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत के पिटीशन का निपटारा करते समय इस न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया अनुच्छेद 21 द्वारा अनुध्यात प्रक्रिया से संगत है या नहीं ? स्वयं अनुच्छेद 136 के शब्दों में ही यह सिद्धांत निहित है कि अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए न्यायालय प्रक्रिया से सुविदित सिद्धांतों का पालन करने वाले न्यायालय के रूप में कार्य करेगा जिन्हें सभी न्यायालयों की कार्यवाहियों को शासित करने और उनके सम्बन्ध में बहुत लम्बे समय से मान्यता दी गई। (पैरा 28)

निर्दिष्ट-निर्णय

		पैरा
[1979]	[1979] 1 उम० नि० प० 243=[1978] 1 एस० सी० सी० 248 : **मेनका गांधी बनाम भारत संघ** (Maneka Gandhi *v.* Union of India)	3
[1979]	6 मार्च, 1979 को विनिश्चत 1973 की दाण्डिक अपील संख्या 170 : **अरुणाचलम बनाम पी० एस० आर० सदानन्थम** (Arunachalam *v.* P. S. R. Sadhanantham);	17

1980(2) eILR(PAT) SC 84

[1975] 1975 (2) एस० सी० सी० 702 :
बार कौंसिल ग्राफ महाराष्ट्र बनाम एम० वी० दाभोलकर
(Bar Council of Maharashtra *v.* M. V. Dabholkar); 14

[1969] [1969] 369 यू० एस० 186 :
बेकर बनाम कार
(Baker *v.* Carr); 14

[1961] [1961] अपील केसेज़ 617 :
ग्रटर्नी जनरल ग्राफ दी गैम्बिया बनाम पियरा सार एेन्जाई
(Attorney-General of the Gambia *v.* Pierra Sarr N. Jie); 14

[1955] [1955] 1 एस० सी० आर० 267 :
दुर्गा शंकर मेहता बनाम ठाकुर रघुराज सिंह ग्रौर ग्रन्य
(Durga Shankar Mehta *v.* Thakur Raghuraj Singh and Others); 21

[1950] [1950] एस० सी० आर० 459 :
भारत बैंक लिमिटेड बनाम भारत बैंक लिमिटेड के कर्मचारी
(Bharat Bank Ltd. *v.* Employees of the Bharat Bank Limited); 21

[1889] एल० आर० [1889] 23 क्यू० बी० डी० 598 :
मुगल स्टीमशिप कम्पनी बनाम मैकग्रेगर गाव एण्ड कम्पनी
(Mogul Steamship Company *v.* McGregor Gow and Company). 24

ग्रारम्भिक (रिट) अधिकारिता : 1979 का रिट पिटीशन संख्या 355.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशन ।

पिटीशनर की ओर से	श्री पी० आर० मृदुल और उनके साथ सर्वश्रीं के० जयराम, के० राम कुमार और अरुणेश्वर गुप्ता
प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से	श्री सोली जे० सोराबजी और उनके साथ सर्वश्री आर० एन० सचदेव और कुमारी ए० सुभाषिणी

अभिलेख-अधिवक्ता

पिटीशनर की ओर से	श्री के० जयराम
प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से	कुमारी ए० सुभाषिणी

न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर :—

क्या ऐसे प्राइवेट नागरिक को जिसका अपराध के शिकार व्यक्ति से दूर का संबंध है, अभिकथित अपराधी को दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील करने की इजाजत के लिए संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष शक्ति का सहारा लेने के लिए अनुज्ञात करना सांविधानिक दृष्टि से विधिमान्य या सैद्धांतिक दृष्टि से वांछनीय है, जिसके द्वारा ऐसे किसी उपबन्ध के अभाव में जो ऐसे अत्युपकारी बाहरी व्यक्ति को अधिक अधिकार प्रदान करता हो, उसके प्राण या स्वाधीनता को खतरे में डाल दिया जाये। यह प्रश्न ऊपर से देखने पर सारगर्भित प्रतीत होता है किन्तु सूक्ष्म-विवेचन पर निस्सार प्रतीत होता है। संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इस रिट पिटीशन में यही प्रश्न विचारार्थ उत्पन्न हुआ है। इस मामले के तथ्यों का सारांश एक वाक्य में इस प्रकार है कि पिटीशनर को एक अपील में उच्च न्यायालय ने हत्या के आरोप से दोषमुक्त कर दिया था किन्तु मृतक के भाई ने, न राज्य ने और न ही प्रथम इत्तला देने वाले ने, अनुच्छेद 136 के अधीन इस न्यायालय में समावेदन किया इजाजत प्राप्त की और अपनी अपील की सुनवाई करवाई जिसके परिणाम-स्वरूप पिटीशनर को (अभियुक्त को) सिद्धदोष किया गया और भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन आजीवन कारावास का दण्डादेश दिया गया। इस दोषसिद्धि के विरुद्ध इस दलील पर जोर दिया गया कि अपील करने की इजाजत और पश्चातवर्ती कार्रवाई अनुच्छेद 21 के अतिक्रमण में होने के कारण असांवधानिक है। अनुच्छेद 21 प्राण और स्वाधीनता का रक्षक एक

प्रतिक्रियात्मक आदेश पत्र है अतः वह दण्डादेश अवश्य सफल होना चाहिए। जब इस अपील की सुनवाई की गई तो इस न्यायालय के समक्ष हल्के तौर पर यह अभिवाक दिया गया था जिस पर संक्षेप में विचार किया गया था और जिसे ठीक ही नामंजूर कर दिया गया था। दूसरे संग्राम का वही भाग्य होगा जो पहले का हुआ था, किन्तु इसमें हमें पिटीशनर के काउन्सेल, श्री मृदुल द्वारा आशाजनक ढंग से दी गई इस दलील को अस्वीकार करने के लिए सूक्ष्म विवेचन करना होगा।

2. इसमें दो परस्पर सम्बद्ध विवाद उत्पन्न हुए हैं और वे हैं (क) अनुच्छेद 21 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 136 की अन्तर्वस्तु और स्वरूप तथा (ख) अच्छे सिमेरीटन को यदि हम ऐसे जनकल्याण की भावना से प्रेरित ऐसे नागरिक का हवाला देने के लिए इस पद का उपयोग कर सकते हैं जो अपने पड़ोसी के साथ न्याय कराने के लिए विधिक प्रक्रिया को चालू कराना चाहता है, को सुने जाने का अधिकार है या नहीं ?

3. अतिसंक्षिप्त होते हुए भी, अनुच्छेद 21 विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया विहित करने पर जोर देकर मानो स्वाधीनता की रक्षा करता है, न कि दैहिक स्वतन्त्रता से वंचित करने के लिए अनिवार्यतक सपाट है। और इस प्रकार स्थापित प्रक्रिया निष्पक्ष होनी चाहिए, न कि काल्पनिक व औपचारिक या निःसत्व ही जैसाकि **मेनका गांधी बनाम भारत संघ**[1] में अधिकथित किया गया था। इस प्रकार यह स्वतः सिद्ध है कि हमारा सांविधानिक विधिशास्त्र राज्य को यह आज्ञा देता है कि विधि द्वारा अधिकथित निष्पक्ष प्रक्रिया का पालन किये बिना किसी व्यक्ति को उसकी दैहिक स्वाधीनता से वंचित न किया जाये। प्रश्न यह है कि क्या उचित या अनुचित कोई प्रक्रिया है जो किसी दयालु पड़ोसी को, जो परिवादी या प्रथम इत्तलादाता नहीं है, उच्च न्यायालय द्वारा अभिकथित रूप से त्रुटिपूर्ण दोषमुक्ति के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने में समर्थ बनाती है। श्री मृदुल का तर्क है कि विधि-शास्त्र में कोई पुरातन विधि नहीं है जो ऐसे किसी विशुद्धतः दयालुआत्मा को इस न्यायालय में समावेदन करने में समर्थ बनाती है और इसलिए उसके मुवक्किल की स्वाधीनता ऐसी कार्यवाही द्वारा छीनी गई है जो विधि द्वारा स्थापित किसी प्रक्रिया के बिना किसी व्यक्ति द्वारा आरम्भ की गई थी। हमें

1 [1979] 1 उम० नि० प० 243 = [1978] 1 एस० सी० सी० 248.

इसकी वकालत में आकर्षण प्रतीत होता है, किन्तु हम इसकी प्रभावोत्पादकता को अस्वीकार करते हैं। हम इस निवेदन से भी प्रभावित नहीं है कि मामले में मृतक का भाई या कोई अन्य आदर्शवान नागरिक एक अत्युपकारी हस्त-क्षेपक है जिसे उस समय कोई सरोकार या शिकायत नहीं होती जब कोई घोर अपराध अदण्डित जा रहा हो। हमारी दाण्डिक न्याय व्यवस्था के लिए एक आध्यात्मिक संवेदनशीलता है जो इस मत का अनुमोदन करती है कि किसी के साथ किया गया अपराध स्वयं उसके साथ किया गया अपराध है, यद्यपि सारगर्भित बातों की दृष्टि से विधि कुछ स्थितियों में ही कार्यवाही करने का अधिकार प्रदान करती है। व्यावहारिक दृष्टि से न्याय का उल्लघन तब ही नहीं होता जब कोई निर्दोष व्यक्ति दण्डित किया जाता है अपितु तब भी होता है जब कोई दोषी व्यक्ति विधि व्यवस्था को प्रभावहीन करके बच जाता है। विधि का प्रमुख उद्देश्य अपराधी का पता लगाना, विचारण करना और दण्ड देना है और यदि उसे दोषी न पाया जाए तो अभियुक्त को दोषमुक्त करना है।

4. अनुच्छेद 21 के अधीन यह आज्ञापक है कि किसी मनुष्य को दोषी ठहराने के लिए और उसकी स्वाधीनता से वंचित करने के लिएएक सभ्य प्रक्रिया हो। निस्संदेह यदि यह न्यायालय अनुच्छेद 136 के अधीन इजाजत देता है और परिणामस्वरूप, उसे दोषी पाता है तो वह उसे उसकी स्वाधीनता से वंचित सर देता है और इसीलिए विचारणीय महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या अनुच्छेद 21 द्वारा प्रकल्पित कोई ऐसी प्रक्रिया है जो अनुच्छेद 136 से स्वतन्त्र या उसमें विवक्षित है। यह प्रकट है कि ऐसा कोई कानूनी उपबन्ध नहीं है जो किसी पर व्यक्ति के पक्ष में अपील का ऐसा अधिकार सृष्ट करता है, जो उसे उच्च न्यायालय द्वारा दी गई दोषमुक्ति को चुनौती देने में समर्थ बनाए। दण्ड प्रक्रिया संहिता अपील का ऐसा अधिकार सृष्ट नहीं करती और साधारण तौर पर यह कहा जा सकता है कि अपील का अधिकार कानून की सृष्टि है। इसलिए यह निवेदन किया गया कि इससे पूर्व कि यह न्यायालय अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत प्रदान करे, अपील का अधिकार पहले से विद्यमान होना चाहिए जिसके अभाव में न्यायालय द्वारा इजाजत देने का प्रश्न पैदा ही नहीं होता। यह तर्क विलक्षण है किन्तु इसका निष्कर्ष भ्रामक है।

5. अनुच्छेद 136 का विस्तार, परिधि और स्वरूप को बारीकी से समझने पर अपील के पूर्व विद्यमान अधिकार और पश्चात्वर्ती इजाजत देने के

बीच विद्यमान विभाजन रेखा सुगमता से विलुप्त हो जायेगी जो पिटीशनर की दलील का प्रमुख आधार है।

6. किसी भी समाज में अन्याय को दूर करने के लिए न्यायशास्त्र सम्बन्धी पहुंच और विस्तृत न्यायिक प्रक्रिया सामाजिक न्याय करने की प्रणाली के रूप में क्रियाशील विधि के बहुमुखी वैशिष्ठ्य का निश्चित सूचक है। इस मापदण्ड के अनुसार हमारी सांविधानिक व्यवस्था सर्वोच्च न्यायालय में विहित है। न्याय करने की अधिकारिता करती है जो सर्वव्यापी और सर्वशक्ति सम्पन्न है किन्तु जो न्यायिक विवेकाधिकार नामक बहुत ही परिष्कृत और नम्य सैंसर से नियंत्रित और मार्गदर्शित है। शक्ति और प्रक्रिया का यह उत्पत्ति स्रोत अनुच्छेद 136 है जो सम्पूर्ण गणराज्य में विधि के अनुसार न्याय के विस्तृत पालन की प्रमुखता प्रदान करता है।

7. चूंकि विधि के सम्बन्ध में निश्चितता एक अनिवार्य गुण है, अतः हम इस बात पर विचार करेंगे कि क्या अनुच्छेद 136 में व्याप्त विस्तृत क्षेत्र विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया की दृष्टि से साधन के रूप में प्रयुक्त होता है। अभिव्यक्त रूप से अनुच्छेद 136 किसी ऐसे विपक्षकार को इस रूप में अपील का अधिकार प्रदान करता, अपितु उपयुक्त मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए उच्चतम न्यायलय को व्यापक वैवेकिक शक्ति प्रदान करता है। वैवेकिक आयाम तो बहुत विस्तृत हैं किन्तु वे न्यायालय की शक्ति के बारे में हैं। प्रश्न यह है कि क्या विवक्षा द्वारा यह एक निष्पक्ष प्रक्रिया की कल्पना करता है जैसा कि अनुच्छेद 21 में अनुध्यात है। हमारे मतानुसार ऐसा है। अनुच्छेद 136 एक विशेष अधिकारिता है। यह अवशिष्ट शक्ति है, इसका विस्तारक्षेत्र असाधारण है और अन्याय का निवारण करने के लिए इसकी सीमा असीम हो सकती है। यह न्यायालय अन्याय का निवारण करके अपनी पूर्ति करता है और व्यापक रूप से यह शक्ति सामान्य मामलों में अनुच्छेद 136 से ली जाती है। क्या न्यायालय में निहित यह शक्ति ऐसी है जिसका प्रयोग उसकी इच्छानुसार किसी भी ढंग से किया जा सकता है? क्या इसके प्रयोग की रीति और प्रयोग के अवसर में कोई प्रक्रियात्मक प्रतिबंध नहीं है? क्या उस समय निष्पक्ष होकर कार्यवाही करना उसका कर्त्तव्य नहीं है जबकि या तो इजाजत देने के मामले या ऐसी मंजूरी के बाद अपील के अन्तिम निपटारे में अनुच्छेद 136 के अधीन मामले की सुनवाई की जा रही हो? हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि सर्वोच्च न्यायालय में निहित शक्ति में एक प्रक्रिया आवश्यक रूप से विवक्षित है। स्मरण रहे कि अनुच्छेद 136 सर्वोच्च न्यायालय को

अधिकारिता प्रदान करता है। संविधान निर्माता अनुच्छेद 136 के शब्दों में ही अकाट्य रूप से यह आशा रखते थे कि देश के सर्वोच्च न्यायाधीशों द्वारा इसका प्रयोग विधि-शास्त्र में पूर्वोदाहरणों द्वारा सुस्थापित न्यायिक सिद्धांतों का सूक्ष्म पालन करके किया जाएगा। न्यायिक विवेकाधिकार श्रेणीबद्ध प्राधिकार है न कि मनमानी सनक। कार्डोजो ने बिल्कुल ठीक ही कहा है :—

> न्यायाधीश चाहे कितना भी स्वतंत्र हो तब भी वह पूर्णत: स्वतंत्र नहीं वह होता अपनी खुशी से कोई नया काम नहीं कर सकता। वह ऐसा कोई विलक्षण पुरुष नहीं है जो सौन्दर्य की देवी या अपनी कोई इष्ट देवी की खोज में स्वेच्छा से घूमता-फिरता हो। उमे सुप्रतिष्ठापित सिद्धातों से प्रेरणा लेनी होती है। उसे आवेशयुक्त भावना, अस्पष्ट और अविनियमित कल्याण भावना के आवेश में नहीं आना चाहिए। उसे विकेकाधिकार का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए कि वह परम्परा के अनुकूल हो, सादृश्यता की पद्धति के अनुरूप हो, प्रथा द्वारा अनुशासित हो और सामाजिक जीवन में व्यवस्था की मूलभूत आवश्यकता के अनुसार हो। इस प्रकार शेष विवेकाधिकार का क्षेत्र पूर्ण अन्त:करण में बहुत व्यापक है।

8. यह प्रकट है कि अनुच्छेद 136 की संरचना एक मिश्रित संरचना है, इसमें शक्ति एवं प्रक्रिया निहित है— शक्ति इसलिए कि यह उच्चतम न्यायालय में अधिकारिता निहित करता है और प्रक्रिया इसलिए कि इसमें सुनवाई का ढंग दिया गया है। न्यायिक विवेकाधिकार के प्रयोग और सुनवाई का ढंग अधिबद्ध है जो कि न्यायालय की प्रक्रिया की एक विशेषता है। संक्षेप में, अनुच्छेद 136 के शब्दों में शक्ति और प्रक्रिया विहित ह जिससे अनुच्छेद 21 की मांग की पूर्ति हो जाती है।

9. हम इस विवाद्यक को मामूली-सा भिन्न तरीके से देखना चाहेंगे। यदि अनुच्छेद 21 को अनुच्छेद 136 में पढ़ा जाए तो निष्कर्ष यह निकलेगा कि विशेष इजाजत के संबन्ध में एक निष्पक्ष प्रक्रिया विहित है जिसे न्यायालय दे सकता है या देने से इन्कार कर सकता है। जब दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील करने की इजाजत के लिए आवेदन किया जाता है तो यह न्यायालय उस कार्यवाही में अन्तर्वलित दैहिक स्वाधीनता के खतरे की गम्भीरता का

---

[1] बैन्जामिन कार्डोजो, दी नेचर ऑफ दी जुडीशियल प्रोसैस, येल यूनिवर्सिटी प्रैस (1921)

मूल्यांकन करता है। यह मानना उचित है कि अनुच्छेद 136 के अधीन पिटीशन पर विचार करते समय न्यायालय स्वाधीनता, उस व्यक्ति, जो न्यायालय से ऐसी इजाजत चाहता है, उसके हेतु और उसके सुनने के अधिकार के प्रश्न पर तथा उन महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान देगा जिसके आधार पर न्यायालय इजाजत देने के लिए प्रेरित होता है। जब अनुच्छेद 136 के अधीन प्रक्रियात्मक परिस्थितियों और कसौटी न्यायलय की अधिकारिता को प्रभावित करती हैं तो यह निष्कर्ष निकालना युक्तियुक्त है कि अनुच्छेद 21 में विवक्षित निष्पक्ष प्रक्रिया की मांग का पर्याप्त उत्तर मिल गया है।

10. जब हम एक बार यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अनुच्छेद 136 एक मिश्रित उपबन्ध है जो व्यापक अधिकारिता निहित करता है, और उच्चतम न्यायालय में इस अद्वितीय अधिकारिता सौंपने का तथ्य ही उस शक्ति के प्रयोग की पद्धति अनुबन्धित करता है यद्यपि अव्यक्त रूप से ही ऐसा है, तो पिटीशन के आक्षेप में और कुछ शेष नहीं है। विशेष इजाजत देने की न्यायालय को छूट है और बाद की सुनवाई की प्रक्रिया सुस्थापित है। इस प्रकार अनुच्छेद 136 शक्ति एवं प्रक्रिया का एक समाकलित उपबन्ध है, जो अनुच्छेद 21 की मांग की पूर्ति करता है जिससे प्राण और स्वाधीनता से वंचित करना न्यायोचित ठहरता है।

11. वैवेकिक शक्ति जितनी व्यापक है इसका प्रयोग उतना ही कम किया जाता है। इस न्यायालय ने अनेकों बार इस बात पर जोर दिया है कि यद्यपि पक्षकार अन्धाधुन्ध इस अधिकारिता का सहारा लेते हैं, फिर भी न्यायालय इस शक्ति का कंजूसी से कभी-कभी प्रयोग करता है। इसके अतिरिक्त, कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़कर, न्यायालय उसे इजाजत नहीं दे सकता जो अभिलेख पर पक्षकार का नाम निर्देशिती नहीं है। इस प्रकार प्रक्रियात्मक सीमाएं विद्यमान हैं और सुनिश्चित निदेशक सिद्धांतों द्वारा शासित हैं।

12. श्री मृदुल ने इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक जिज्ञासू, परोपकारी या अपराधी साहसी न्यायालय में नहीं आ सकता और अनुच्छेद 136 का सहारा लेकर दोषमुक्ति के अधिमत को नहीं उलट सकता। यह निश्चित रूप से न्यायिक विवेकाधिकार के प्रयोग का माला है और न्यायालय में यह विश्वास किया जा सकता है कि वह पारम्परिक परिपाटियों को और अनुछेद 21 के मूल्यों को ध्यान में रखेगा किन्तु किसी गैर पक्षकार आवेदक के लिए अनुछेद 136 के अधीन इजाजत का कोई रूढ़ि जन्यनिषेध

अनम्य रूप से अधिकथित नहीं किया जा सकता, क्योंकि न्याय की मांग करना कोई प्रच्छन्न गुण नहीं हैं ।

13. यह सही है कि विशेष रूप से उच्चतम न्यायालय के अत्यन्त खर्चीले प्रक्रम पर न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग के बारे में अत्यन्त सतर्क निगाह रखनी चाहिए और सामान्यतया हस्तक्षेपी दर्शकों को अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। यह भी सही है कि दाण्डिक अधिकारिता में यह कड़ाई और भी अधिक लागू होती है क्योंकि इस न्यायालय के प्रतिकूल अधिमत से प्राण या स्वाधीनता को असाध्य क्षति हो सकती है ।

14. इसके बाद, हमें इस बात पर जोर देना होगा कि हम ऐसे काल में रह रहे हैं जब अनेक समाज-विरोधी तत्व अप्रतितुष्ट शिकायत की नई समस्याएं पैदा करते हैं जब कि राज्य दाण्डिक कार्यवाही आरम्भ करने के लिए एकमात्र साधन हो जाता है। कभी-कभी नौकरशाही के पदाधिकारियों की घोर उदासीनता से और कभी-कभी ऊंचे पदाधिकारियों के राजनीतिक झुकाव के फलस्वरूप अनुच्छेद 136 के अधीन इस न्यायालय में मामला ले जाने से इन्कार हो सकता है भले ही मुकदमे का न्याय उसे भली प्रकार न्यायोचित ठहराये। जब कि प्रत्येक नागरिक की सुगम पहुंच के भीतर स्वतन्त्र अभियोजन प्राधिकरण न होने की दशा में, दण्ड विधि प्राइवेट व्यक्तियों के बीच वैयक्तिक प्रतिशोध में हथियार के रूप में इस्तेमाल नहीं की जानी चाहिए" जैसा कि एक बार लार्ड साक्रॉस[1] ने लिखा था। अनुच्छेद 136 के लक्ष्य में वृद्धि करने के लिए "स्टैन्डिंग" पद का व्यापक लक्ष्यार्थ आवश्यक है। ऐसी अधिकारिताएं हैं जिनमें प्राइवेट व्यक्ति न कि एकमात्र राज्य, दाण्डिक कार्यवाहियां संस्थित कर सकते हैं। ला रिफोर्म कमीशन (आस्ट्रेलिया) ने "एक्सेस टू कोर्ट्स—1 स्टैंडिंग पब्लिक इन्टरैस्ट सूट्स" विषय पर अपने परिचर्चा पत्र संख्या 4 में लिा थखा —

> "इस समय साधारण नियम यह है कि कोई भी मजिस्ट्रेट के न्यायालय में कार्यवाहियां आरम्भ कर सकता है और अभियोजन चला सकता है। इस अधिकार को कायम रखने के लिए तर्क परिधि के दोनों छोरों पर उत्पन्न होता है— बड़े-बड़े मामले और बारबार आने वाले छोटे मामले—बड़े-बड़े मामले वे हैं जो स्वयं सरकार से

---

[1] दि टाइम्स, 26 मई, 1977,20.

> संबन्धित हैं—जैसे वाटरगेट या पालसन। चाहे विधि की दृष्टि से वे कितने स्वतन्त्र हों, फिर भी लोक पदाधिकारी पुलिस या अभियोजन प्राधिकारी किसी न किसी शासकीय पर्यवेक्षण के अधीन होते हैं और शासकीय निधि पर आश्रित होते हैं। उसके अधिकारियों का सरकार से अनिवार्यतः वैयक्तिक सम्बन्ध होगा। वे स्थापन के अंग होंगे। ऐसे मामले हो सकते हैं जिनमें राजनैतिक प्रभाव से संबन्धित मामले की पैरवी न करने का विनिश्चय ठीक या गलत राजनैतिक दृष्टि से प्रेरित दिखाई देगा। कभी-कभी दुरुपयोग की संभावना को स्वीकार करते हुए न्यायालय में ऐसे विषय को लाने के किसी नागरिक के अधिकार को प्रतिधारित करने में आयोग को औचित्य दिखाई पड़ता है।

जैसा कि परिसंवाद या पत्र में संकेत किया गया था, अंग्रेजी प्रणाली में भी प्राइवेट नागरिक को अभ्यारोपण करने की इजाजत है। हमारे मतानुसार, "व्यथित व्यक्ति" (परसन एग्रीवड) और "स्टैंडिंग" की संकल्पना के बारे में विंटेज अंग्रेजी ला में निर्धारित संकीर्ण सीमाओं को हमारी लोकतान्त्रिक स्थिति में उदार बनाया जाना चाहिए। **बार काउन्सिल आफ महाराष्ट्र** बनाम **एम०वी० दाभोलकर**[1] में इस न्यायालय ने ऐसा ही व्यापक अर्थ किया था। अमेरिका के उच्तम न्यायलय ने **बेकर** बनाम **कार**[2] वाले प्रसिद्ध सामले में "स्टैंडिंग" के प्रति ऐसे ही प्रतिबन्धित दृष्टिकोण को उदार बनाया था। **अटर्नी जनरल आफ दी गैम्बिया** बनाम **पियरा सार ऐन्जाई**[3] वाले उल्लेखनीय मामले में लार्ड डैनिंग ने इस प्रकार उल्लेख किया था —

> "....व्यथित व्यक्ति शब्दों का व्यापक अर्थ है और इसका प्रतिबंधित निर्वचन नहीं किया जाना चाहिए किन्तु फिर भी इनमें ऐसा कोई भी व्यस्त व्यक्ति नहीं आता जो ऐसी बातों में हस्तक्षेप करता है जिनका उससे कोई संबंध नहीं है,"

प्रोफेसर एस० ए० डे० स्मिथ ने भी यही मत[4] अपनाया है :

---

[1] [1975] 2 एस० सी० सी० 702.

[2] [1969] 369 यू० एस० 186.

[3] 1961 अपील केसेज 617.

[4] जर्नल आफ दि इण्डियन ला इन्स्टीच्यूट अप्रैल-जून, 1971 वर्ष 13, अंक 2, पृष्ट 174 पर वी० एस० देशपाण्डे के लेख "स्टैंडिंग एण्ड जस्टिसेबिलिटी में से उद्धृत।

1980 (2) eILR(PAT) SC 84

सभी विकसित विधि प्रणालियों में लोकहित के दो पहलुओं के बीच परस्पर विरोधी तत्वों का ताल-मेल बिठाने की समस्या का सामना करना पड़ा है—विधि के परिवर्तन में व्यष्टिक नागरिकों को सक्रिय तौर पर भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने की वांछनीयता और पेशेवर मुकदमेबाजों और हस्तक्षेपियों को ऐसे मामलों में जिनका उनसे कोई संबंध नहीं है, न्यायालय की अधिकारिता का सहारा लेने के लिए प्रोत्साहित करने की अवांछनीयता ।

प्रोफेसरने एच० डब्ल्यू० आर० वेड, भी ऐसी ही टिप्पणी[1] की है ।

दूसरे शब्दों में सरशियोरेराइ सुने जाने के अधिकार की संकीर्ण संकल्पना तक सीमित नहीं है, इसमें सामान्य कार्यवाही का तत्व निहित है । ऐसा इसलिए है क्योंकि यह आवेदक के व्यक्तिगत अधिकारों से परे दिखाई पड़ता है । इसका उद्देश्य निचले अधिकरणों और लोक प्राधिकरणों को उनकी शक्तियों का दुरुपयोग करने से रोककर न्याय तन्त्र को उचित रूप से चालू रखता है :

दाभोलकर वाले मामले [2] में हम में से एकने[3] में लिखा था —

यह संभव आशंका कि लोकहित की दृष्टि से विधिक हैसियत को व्यापक करने से असंख्य मुकदमे आरम्भ हो सकते हैं, जिससे न्यायाधीश बहुत व्यस्त हो सकते हैं, भ्रामक है, क्योंकि लोक रिष्ट को दबाने के लिए जनता द्वारा न्यायालय का सहारा लेना न्याय प्रणाली के प्रति योगदान ।

अस्ट्रेलिया ला कमीशन ने भी कुछ इसी प्रकार का मत अपनाया है ।

15. कैपेलेट्टी ने न्यायालय में पहुंच के विधि शास्त्र की महत्ता को अत्यन्त सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है —

न्याय तक कारगर पहुंच का अधिकार नए नए सामाजिक सुधारों के साथ उभर कर सामने आया है । वस्तुत: इन नये अधिकारों में इसका सर्वोपरि महत्व है, क्योंकि स्पष्टत: पारस्परिक एवं नए

[1] वही, पृष्ठ 175.

[2] [1975] 2 एस० सी० सी० 702.

[3] कृष्ण अय्यर.

सामाजिक अधिकारों का उपयोग तभी हो सकता है जब उनके कारगर संरक्षण के लिए व्यवस्था की जाए। साथ ही ऐसा संरक्षण न्यायिक प्रणाली के ढांचे के अन्तर्गत साध्य उपचार से पूरी तरह आश्वत हो। इस प्रकार न्यायालय तक कारगर पहुंच को अत्यन्त आधारभूत आवश्यकता माना जा सकता है जो कि ऐसी प्रणाली का अत्यन्त आधारभूत मानव अधिकार है जिसका अभूतपूर्व तात्पर्य विधिक अधिकारों को प्रत्याभूत करना है।

16. इस प्रकार हमारा समाधान हो गया है कि अनुच्छेद 136 का छोटे-छोटे मामजों में सहारा लेकर विपक्षियों को ब्लैकमेल करने वाले लोग दोगुले होते हैं। हर वास्तविक प्रार्थी के लिए न्याय की पहुंच उपचारात्मक विधि-शास्त्र का एक लोकतांत्रिक आयाम है जैसे कि लोकहित के मुकदमे, वर्गगत कार्यवाही, लोकहित में की गई कार्यवाहियां है। जब कि हमारे संविधान में सामाजिक न्याय को एक प्रमुख ध्येय के रूप में स्वीकार किया गया है, हम प्रक्रिया सम्बन्धी पुराने ढ़र्रे पर नहीं चल सकते। हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि रिट पिटीशनर की दलीलों में कोई गुणता नहीं है और पिटीशन खारिज करते हैं।

न्यायाधिपति आर० एस० पाठक —

17. मद्रास उच्च न्यायालय ने अपनी अपीली अधिकारिता में पिटीशनर सादानन्थम को भारतीय दण्ड सहिता की धारा 302 और धारा 148 के आरपों से दोषमुक्त कर दिया। मृतक के एक भाई अरुणाचलम ने दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील करने की विशेष इजाजत के लिए संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन इस न्यायालय में आवेदन किया। न्यायालय ने विशेष इजाजत दे दी और अन्ततोगत्वा अपील मंजूर कर ली गई (**अरुणाचलम बनाम पी० एस० आर० सदानन्थम को देखिए**[1] और उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हुए भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित दोषसिद्धि और दण्डादेश को बहाल कर दिया गया। पिटीशनर ने यह रिट पिटीशन फाइल किया है और दलील दी है कि इस न्यायालय का निर्णय और आदेश एक अकृतता है और इसे अपास्त किया

---

[1] 1973 की दाण्डिक अपील सं० 170 जिसका विनिश्चय न्या० मुर्तजा फजल अली और न्या० ओ० चिनप्पा रेड्डी ने 6 मार्च 1979 को किया था।

जाना चाहिए। प्रमुख दलील यह है कि अनुच्छेद 136 अरुणाचलम (तृतीय प्रत्यर्थी) को विशेष इजाजत देने के लिए इस न्यायालय को सशक्त नहीं करता और न्यायालय द्वारा विशेष इजाजत देना तथा अपील ग्रहण करना संविधान के अनुच्छेद 21 के उल्लंघन में हैं।

18. अरुणाचलम संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत के लिए आवेदन करने का हकदार नहीं था। इस आधार पर अपील के कायम रखने को अपील की सुनवाई करने वाले न्यायपीठ के समक्ष चुनौती दी गई थी किन्तु न्यायपीठ ने यह आक्षेप नामंजूर कर दिया था और अभिनिर्धारित किया था कि उसे विशेश इजाजत पिटीशन ग्रहण करने कि अनुच्छेद 136 के अधीन प्रचुर शक्ति है। विद्वान न्यायाधीशों ने अधिकथित किया कि न्यायालय को प्राइवेट पक्षकारों के निवेदन पर उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति के निर्णयों के विरुद्ध अपील ग्रहण करने की अधिकारिता है।

19. हमने विद्वान बन्धु वी० आर० कृष्ण अय्यर का निर्णय पढ़ा किन्तु प्रश्न के महत्व को ध्यान में रखते हुए हम यह आवश्यक समझते हैं कि अपना मत लेखबद्ध किया जाए।

20. उच्चतम न्यायालय की अपीली अधिकारिता का विस्तार संविधान में अन्तर्विष्ट उपबधों की सम्पूर्ण संहिता से उत्पन्न होता हैं। इसमें अनुच्छेद 132 के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा इस प्रमाण-पत्र के आधार पर अपील भी शामिल है कि मामले में उच्च न्यायालय के किसी निर्णय, डिक्री या अन्तिम आदेश द्वारा निपटाई गई सिविल, दाण्डिक या अन्य कार्यवाहियों में संविधान के निर्वचन के बारे में विधि का सारवान प्रश्न अन्तर्गस्त है, और अनुच्छेद 133 के अधीन इस प्रमाण-पत्र के आधार पर अपील के मामले में कि व्यापक महत्व का विधि का सारवान प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है जिस पर उच्चतम न्यायालय का विनिश्चय अपेक्षित है। उच्च न्यायालय के निर्णय या अन्तिम आदेश या दण्डादेश द्वारा निपटाई गई किसी दाण्डिक कार्यवाही में उन मामलों के अतिरिक्त जिनमें उच्च न्यायालय ने अभियुक्त को सिद्धदोष ठहराया है और या तो विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति के आदेश को अपील में उलटते हुए या अधीनस्थ न्यायालय से मामले को अपने पास विचारण के लिए वापस लेने पर उसे मृत्यु दण्डादेश दिया है। अपील तब उच्चतम न्यायालय में जाती है जब उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किए जाने योग्य है। अनुच्छेद 135

ऐसे किसी विषय की बाबत उच्चतम न्यायालय को अधिकारिता और शक्ति प्रदान करता है जिसके विषय में अनुच्छेद 133 या अनुच्छेद 134 लागू नहीं होता यदि ऐसी अधिकारिता और शक्ति संविधान के प्रारम्भ से पूर्व फेडरल न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य थी। अनुच्छेद 136 में घोषणा की गई है कि :—

> "इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी उच्चतम न्यायालय विवेक से भारत राज्यक्षेत्र में के किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा किसी वाद या विषय में दिये हुए किसी निर्णय, अज्ञाप्ति, निर्धारण, दण्डादेश या आदेश की अपील के लिए विशेष इजाजत दे सकेगा।

इसके बाद के अन्य उपबंधों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है।

21. स्पष्ट है कि अनुच्छेद 136 द्वारा प्रदत्त अधिकारिता का उद्देश्य इस न्यायालय को अत्यन्त व्यापक न्यायिक शक्ति प्रदान करना है और संभवतः इसे विश्व में सर्वशक्तिशाली न्यायालय बनाना हैं। न्यायिक शक्ति सिविल मामलों में व्यक्तियों के अधिकार और बाध्यताओं पर प्रभाव डालने वाले तथा दाण्डिक मामलों में स्वाधीनता पर प्रभाव डालने वाले एवं राज्य के राजस्व से संबंधित मामलों पर प्रभाग डालने वाले प्रत्येक निर्णय, निर्धारण, दण्डादेश या आदेश तक विस्तृत है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करता है कि भारतीय गणराज्य की आधारशिला जोकि न्यायालय की चट्टान पर टिकी हुई है, देश में कहीं भी अन्याय से हिल न जाए। (**भारत बैंक लिमिटेड** बनाम **भारत बैंक लिमिटेड के कर्मचारी को देखिए**[1] जैसे कि न्यायालय ने **दुर्गा शंकर** मेहता बनाम **ठाकुर रघुराज सिंह और अन्य**[2]। वाले मामले में मत व्यक्त किया था अनुच्छेद 136 उच्चतम न्यायालय में विशष इजाजत की मंजूरी द्वारा अपीलें ग्रहण करने और सुनने के मामले में दाण्डिक अधिकारिता निहित करता है।

22. इसके बावजूद एक परिसीमा है जो हमारी राय में यहां एकदम सुसंगत है। यह परिसीमा न्यायालय की अधिकारिता में निहित है और न्यायालय के समक्ष लाये जाने वाले मामले की

---

[1] [1950] एस० सी० आर० 459, 474.

[2] [1955] 1 एस० सी० आर० 267, 272.

प्रकृति और स्वरूप से उत्पन्न होती है। यह एक ऐसी परिसीमा है जिसका पालन न्यायालय में निहित प्रत्यक्षतः व्यापक शक्ति के बावजूद आवश्यक है। जब अनुच्छेद 136 के अधीन न्यायालय में पिटीशन प्रस्तुत किया जाए तो न्यायालय को पिटीशन ग्रहण करने और निपटाते समय अपने समक्ष लाए जाने वाले मामले की प्रकृति और स्वरूप पर उचित ध्यान देना होगा।

23. प्रश्न यह है कि क्या मृत व्यक्ति के जिसकी हत्या की गई है, भाई को अभियुक्त की दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील करने की विशेष इजाजत के लिए संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन पिटीशन करने का अधिकार है? इस प्रश्न का सीधा संबंध अपराध और दाण्डिक कार्यवाही की प्रकृति से है।

24. अपराध की अनेक भिन्न-भिन्न परिभाषाएं करने का प्रयास किया गया। (और कुछ ऐसे विधि-वेत्ता हैं जिनका कहना है कि इसकी परिभाषा देना असंभव है), किन्तु उसकी प्रकृति के एक गुण के संबंध में व्यापक सहमति है और वह यह है कि वह ऐसा अवैध कार्य है जो लोक-कल्याण के विरुद्ध एक अपकृत्य की कोटि में आता है। (**मुगल स्टीमशिप कम्पनी बनाम मैकग्रेगर गाव एण्ड कम्पनी**[1] को देखिए)। एक संकल्पना के रूप में, अपराध की परिभाषा "ऐसे आचरण के रूप में की गई है जिसके बारे में किसी भी समाज का पर्याप्त रूप से शक्तिशाली वर्ग यह महसूस करता है कि वह उसके हित का विनाश करने वाला है क्योंकि उससे उसकी सुरक्षा, स्थिरता या आराम को खतरा हो सकता है, "जिसे" वह प्रायः विशेष रूप से जघन्य मानता है और उसे उतनी ही कठोरता से दबाना चाहता है। यदि संभव है तो वह सुनिश्चित करता है कि राज्य में जो प्रभुत्वसम्पन्न शक्ति है उसका उपयोग इस रिष्टि को रोकने के लिए या उसके दोषी को दण्ड देने के लिए किया जाए **ब्लैकस्टोन**[2] ने अपराध की परिभाषा लोक अधिकारों और कर्त्तव्यों के भंग और उल्लंघन के रूप में की है जिनसे सम्पूर्ण समाज पर प्रभाव पड़ता है। अतः अपराध ऐसा कार्य है जिसे विधि के अनुसार व्यापक रूप से समाज के लिए हानिकारक समझा जाता है। यद्यपि तत्काल क्षति किसी एक को होती है, हत्या से मुख्यतः किसी व्यक्ति द्वारा क्षतिग्रस्त होता है किन्तु मनुष्य जीवन की घोर अवहेलना

---

[1] [1889] 23 क्यू० बी० डी० 598, 606.

[2] केनीकृत आउट लाइन्स आफ क्रिमिनल ला 18 वां संस्करण, पृ० 2 पैरा 3.

[3] कमेंटरीज़, III. 2.

1980(2) eILR(PAT) SC 84

के कारण वह हत्यारे और क्षतिग्रस्त व्यक्ति के परिवार के बीच क्षतिपूर्ति मात्र के मामले से अधिक हो जाता है। जो लोग ऐसे कृत्य करते हैं उनके विरुद्ध राज्य द्वारा कार्यवाही की जाती है जिससे कि यदि वे सिद्धदोष ठहराए गए तो उन्हें दण्ड दिया जा सके।[1] सम्पूर्ण समाज को चुनौती के रूप में अपराध की धारणा इस औपचारित सिद्धांत की सारत: समकक्षी रूप है कि राज्य ही दाण्डिक अभियोजन का एकमात्र स्वामी होता है[2]। दाण्डिक कार्यवाही में राज्य लोक आधारों पर अभियोजक के रूप में आगे आता है। किसी दाण्डिक कार्यवाही में किसी प्राइवेट व्यक्ति का कोई प्रत्यक्ष हित नहीं होता, यद्यपि कुछ मामलों में कानून द्वारा अपवाद बनाए जा सकते हैं। यह सभी जानते हैं कि दाण्डिक अभियोजन का आशय व्यक्ति प्रतिशोध या बदले की व्यक्तिगत तुष्टि नहीं है।[3]

25. भारत में भी दण्ड विधि राज्य को ही अभियोजक के रूप में अनुध्यात करती है। दण्ड प्रक्रिया संहिता के अनुसार पुलिस द्वारा प्राप्त सूचना पर या किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष किसी प्राइवेट व्यक्ति द्वारा फाइल किए गए परिवाद पर राज्य का तंत्र कार्यवाही शुरू करता है। यदि किसी मामले में विचारण किया जाता है और अभियुक्त दोषमुक्त कर दिया जाता है तो दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील का अधिकार बिलकुल सीमित है। दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898[4] के अधीन राज्य उच्च न्यायालय में अपील करने के लिए हकदार था और परिवादी उच्च न्यायालय द्वारा अपील करने की विशेष इजाजत दिए जाने पर ही ऐसा कर सकता था। अपील का अधिकार अन्य हितबद्ध व्यक्तियों को नहीं दिया गया था। दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973[5] के अधीन राज्य में निहित अपील का अधिकार अब उच्च न्यायालय द्वारा राज्य को इजाजत दिए जाने के अधीन बना दिया है। परिवादी अब भी पहले से

---

[1] सामण्ड आन जुरिसप्रूडैन्स, 12 वां संस्करण, पृष्ठ 92 पैरा 14.

[2] करन्ट लीगल प्रोबलम्स, 1955 : कलैनविले विलियम्स, "दा डैफिनिशन आफ क्राइम", पृष्ठ 107, पृष्ठ 122 पर.

[3] चूंकि इस मामले पर व्यापक रूप से विचार किया जा रहा है इसलिए लोक और प्राइवेट अपराधों में अन्तर करना यहां आवश्यक नहीं है और उन अपराधों का वर्गीकरण करना आवश्यक नहीं है विधि जिनका शमन करने की इजाजत देती है.

[4] धारा 417.

[5] धारा 378.

वद्यमान शर्त के अधीन है कि उसे अपील करने की विशेष इजाजत लेनी होगी। अपील के अधिकार पर इस प्रकार अधिरोपित प्रतिबन्ध ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध फिर से कार्यवाही करने की अनिच्छा से प्रेरित है जिसे सक्षम न्यायालय द्वारा आपराधिक आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया है और उसे मामले की और परीक्षा की चुनौती और तनाव का शिकार बनाया जाएभले ही वरिष्ठ न्यायालय ऐसा अभिनिर्धारित करे। भारत के विधि आयोग[1] ने इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया और यह उल्लेख करते हुए कि कुछ मामलों में कार्यवाही आरम्भ करने के लिए व्यथित व्यक्तियों को अनुज्ञात करके और उच्च न्यायालय की विशेष इजाजत से दोषमुक्त के विरुद्ध अपील करने के लिए परिवादी को अनुज्ञात करके कुछ अपवादों को संहिता में मान्यता दी गई है, दोषमुक्ति के अपीलों प्रोत्साहित करने की व्यापक वांछनीयता के विरुद्ध मत व्यक्त किया। उसने इंगलैण्ड और अन्य देशों में प्रचलित कामन ला के विधि शास्त्र का हवाला दिया जहां दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील का अधिकार राज्य में निहित है और जहां जोर इस आवश्यकता पर दिया जाता है कि व्यापक महत्व के विधि के प्रश्न का विनिश्चय साधारण प्रशासन के और दण्ड=विधि के उचित विकास के हित में किया जाए। किन्तु साथ ही विधि आयोग ने यह भी कहा कि यदि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील का अधिकार प्रतिधारित रखा गया और प्रतिवादी को भी दिया गया तो तर्क की दृष्टि से विधि के अन्तर्गत ऐसे मामले भी आ जाएंगे जो परिवाद पर संस्थित नहीं किए गए हैं। उसने मत व्यक्त किया था —

> "प्रत्यक्ष अन्याय के घोर मामले, जहां सरकार कार्रवाई करने में असफल रहती है और व्यथित पक्षकार यह बुरी तरह महसूस करता है कि इस पर आगे विचार किया जाना चाहिए, हमारे मतानुसार सरकार की दया पर नहीं छोड़े जाने चाहिएं। न्याय प्रशासन में विश्वास पैदा करने और उसे बनाए रखने के लिए प्राइवेट पक्षकार को दिया गया इजाजत लेकर अपील करने का सीमित अधिकार प्रतिधारित रखा जाना चाहिएं और इसके अन्तर्गत वे मामले भी आने चाहिएं जो प्राइवेट परिवाद पर या अन्यथा व्यथित व्यक्ति के निवेदन पर चलाए जाएं।"

---

[1] 48 वीं रिपोर्ट, 1972, पृष्ठ 17-21 पैरा 48 = 58.

1980(2) eILR(PAT) SC 84

26. बहरहाल, जब दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 अधिनियमित की गई थी तो जैसा कि हम देख चुके हैं, कानून द्वारा अपील का अधिकार प्राइवेट पक्षकारों के मामलों में परिवादी एक सीमित रखा गया था। यही विधि की नीति का तात्विक सूचक है।

27. ऐसी दाण्डिक कार्यवाही की मूलभूत प्रकृति को ध्यान में रखते हुए जिसका उल्लेख किया जा चुका है, अब उन बातों पर विचार करना समुचित होगा जो न्यायालय को दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध प्राइवेट पक्षकार द्वारा अपील करने की विशेष इजाजत के पिटीशन को ग्रहण करते समय ध्यान में रखनी चाहिए। जो कुछ कहा जा चुका है, उससे यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 136 के अधीन अधिकारिता का सहारा लेने के लिए ऐसे प्राइवेट पक्षकार को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता जो निजी प्रतिशोध या वैयक्तिक बदले की भावना से न्यायिक प्रक्रिया का प्रयोग करना चाहता है। जहां सिविल कार्यवाही हो सकती है, वहां भी इसे प्रपीड़न के उपकरण के रूप में अनुज्ञात नहीं किया जा सकता। प्रत्येक मामले में न्यायालय को इस बात पर अवश्य विचार करना चाहिए कि किस हित से प्रेरित होकर पिटीशनर न्यायालय में आया है और क्या विशेष इजाजत देने से समाज का हित-साधन होगा। ऐसे विधि-शास्त्र में प्राण और स्वाधीनता के अधिकार को मूलभूत प्राथमिकता देता है, न्यायालय का यह कर्त्तव्य है कि वह उन लोगों के हेतु और आकांक्षाओं का सूक्ष्म विश्लेषण करे जो किसी दूसरे के प्राण या स्वाधीनता के विरुद्ध उसकी प्रक्रिया का इस्तेमाल करना चाहता है। इस जांच में संभवतः न्यायालय यह समाधान करना चाहेगा कि क्या राज्य के पास विशेष इजाजत के लिए पिटीशन फाइल न करने के लिए उपयुक्त कारण हैं या नहीं? हमारे विचार में न्यायालय को परिवादी से भिन्न किसी प्राइवेट पक्षकार द्वारा फाइल किया गया विशेष इजाजत पिटीशन उन्हीं मामलों में ग्रहण करना चाहिए जिनमें वह आश्वस्त हो जाए कि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील से लोकहित-साधन होगा और यह कि राज्य ऐसे कारणों से विशेष इजाजत के लिए पिटीशन फाइल करने से विहित रहा है जिनका लोकहित से कोई संबंध नहीं है बल्कि प्राइवेट प्रभाव, सद्भाव की कमी और अन्य अतिरिक्त बातों से प्रेरित रहा है। तदनुसार, हम दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत के लिए पिटीशन फाइल करने के लिए परिवादी से भिन्न किसी प्राइवेट पक्षकार के अधिकार को निर्बंधित करेंगे। संभवतः यह ध्यान रखना वांछनीय है कि विशेष इजाजत देने के बाद अपील की जाएगी और इसीलिए अधिकारिता का सहारा ऐसे

1980(2) eILR(PAT) SC 84

पिटीशनर द्वारा लिया जाये जिसे विधि द्वारा मान्य सुने जाने का अधिकार प्राप्त है।

28. इस प्रश्न के संबंध में कि क्या अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत के पिटीशन का निपटारा करते समय इस न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया अनुच्छेद 21 द्वारा अनुध्यात प्रक्रिया से संगत है या नहीं हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि स्वयं अनुच्छेद 136 के शब्दों में ही यह सिद्धान्त निहित है कि अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए न्यायालय प्रक्रिया के सुविदित सिद्धान्तों का पालन करने वाले न्यायालय के रूप में कार्य करेगा जिन्हें सभी न्यायालयों की कार्यवाहियों को शासित करने और उनके संबंध में बहुत लम्बे समय से मान्यता दी गई है। हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं हुआ है।

29. पिटीशनर यह सिद्ध करने में असफल रहा है कि यह अपील मंजूर करने वाले इस न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप करने का मामला है।

30. रिट पिटीशन खारिज किया जाता है किन्तु परिस्थितियों में खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।

रिट पिटीशन खारिज किया गया।

कृ०/